ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 25, अंक 228 अक्टूबर 2022

धम्मचक्र प्रवर्तन दिवस
की
हार्दिक शुभकामनाएँ

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 25 अंक 228
अक्टूबर 2022

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रहिम श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया	रंजय कुमार पटेल (शोधार्थी)	04
3	दक्षिण में रामकथा-समकालीन रचनाओं के संदर्भ में एक पुर्नपाठ	डॉ. ए.एस. सुमेष	09
4	वैदिक साहित्य में नारी	डॉ. मीरा त्यागी	12
5	'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में चित्रित बेड़िया समाज और नारी-विमर्श	लक्षेश्वरी (शोधार्थी)	16
6	सुशासन में नागरिक समाज की भूमिका	डॉ. रविकान्त शुक्ल	18
7.	Importance of Life Skills for School Going Adolescents in the wake of COVID Pandemic	Vishal Mishra Parul Gazta (Research Scholor)	21
8	समाचार, कविता		26

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम - आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.- 63040357829
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

तथागत गौतम बुद्ध का बौद्ध धम्म मानवता, नैतिकता और आचरण पर आधारित है 'पंचशील' उसकी आत्मा है जिसमें सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, शुद्धता जीवन के आधार है। बौद्ध धम्म जीवन की शुद्धता और पारस्परिक भाईचारे के करुणा व प्रेम भरे व्यवहार पर जोर देता है। यह वर्ण, नस्ल, जात–पात, ऊँच–नीच के भेदभाव से परे पूरी तरह से वैज्ञानिक धर्म है। जहाँ रूढ़िवाद, आडम्बर, संकीर्णता, पोंगापंथी वर्ण व्यवस्था, ब्राह्मणवाद को कोई स्थान नहीं है।

बौद्ध धम्म अवतारवाद, देवी–देवता, भाग्य–भगवान, स्वर्ग–नर्क, पाप–पुण्य, पुर्नजन्म को नकारते हुए इसी जीवन को सुन्दर, सफल, निर्विकार बनाने पर जोर देता है। नफरत, दुर्भावना, वैमनस्य, कुविचार से बौद्ध धम्म शून्य है। यह प्रत्येक मानव के लिये प्रेम, करुणा, सद्भाव और भातृभाव से पगा है। बौद्ध धम्म का मूल संदेश ही है :–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामय।
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु,
मा कश्चिद दुख भाग भवेत।''

अर्थ यह है कि सभी सुखी रहें, सभी निरोगी रहें, सबका कल्याण हो, कोई किसी भी तरह दुःखी नहीं हो। स्वयं महाकारुणिक बुद्ध ने प्रेम का संदेश देते हुए कहा है :–

''न हि वेरेन वेरानि सम्मनिधं कुदा चनम।
अवरेचन सम्मति एस धम्मो सनत्तनो।।''

अर्थात् बैर से बैर कभी खत्म नहीं होता अबैर से ही बैर मिटता है।

आज से लगभग ढाई–तीन हजार वर्ष पहले ये तथागत बुद्ध ही थे जिन्होंने कहा कि वर्ण–व्यवस्था, जात–पात सब निरर्थक है। स्वयं उन्होंने अन्य धर्मों के अवतारों व पीर–पैगम्बरों के समान स्वयं को मुक्तिदाता नहीं कहा, अपितु मुक्ति का मार्गदर्शक बताते हुए कहा है कि ''किसी बात को इसलिये मत मानो कि वह किसी धार्मिक ग्रंथ में लिखी है, किसी बात को इसलिये भी मत मानो कि उसे किसी व्यक्ति विशेष ने कही है, किसी बात को इसलिये भी मत मानो कि बहुत संख्यक लोग उसे मानते हैं बल्कि किसी बात को अपने स्वविवेक से परखते हुए तभी मानो जब वह आपके स्वयं के लिये और समाज के लिये हितकारी हो। उनका मूलतंत्र है–

''अत्त दीपो भवः'' अपना दीपक आप बनो।

तथागत सम्यक् सम्बुद्ध प्राप्ति के बाद बुद्ध गया से धर्मोपदेश का निश्चय कर सारनाथ गये और वहाँ पर पूर्व स्वाध्यायी पांचों परिव्राजकों को सर्वप्रथम आये 'आष्टांगिक मार्ग' का धर्मोपदेश किया। बुद्ध का यह प्रथम उपदेश ही 'धम्म चक्र प्रवर्तन' नाम से प्रसिद्ध है। बुद्ध धम्म का केन्द्र बिन्दु मानव और मानव का मानव के प्रति क्या कर्तव्य है ? यही बुद्ध की पहली स्थापना है। उनकी दूसरी स्थापना है कि मानव दुःखी है, कष्ट में है, दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहा है। संसार दुख से भरा पड़ा है और धम्म का उद्देश्य इस दुख का नाश करना ही है। इसके अतिरिक्त सद्धम्म और कुछ नहीं है। अर्थात् दुख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुख को नाश करने का उपाय, यही धम्म की आधारशिला हैं

मानव की पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियों के साथ ही छठा है 'मन'। मन के समाधान के लिये सम्यक् जीवन और सम्यक् ज्ञान की जरूरत है। बुद्ध ने मानव को हर प्रकार के दुख से मुक्ति पाने के लिए सम्यक् जीवन और सम्यक् ज्ञान का मार्ग बताया है। यह मार्ग मानव को परमार्थ के लिए प्रेरित नहीं करता बल्कि मानवीय जीवन के लौकिक–अलौकिक, भौतिक–अभौतिक सभी प्रकार के दुखों को नष्ट करने की प्रेरणा देता है। बुद्ध का धम्म ही मानव को कर्मकाण्ड़ों से, धार्मिक पाखण्ड़ों से, पूजा–पाठ से, गंगा स्नान, रामायण पाठ, गीता पाठ से, टीका–चंदन, जनेऊ आदि बंधनों से मुक्त कराता है। जहाँ सम्यक् ज्ञान है वहीं जीवन में सुख और शांति है।

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

– डॉ. तारा परमार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

– रंजय कुमार पटेल (शोधार्थी)

सारांश : प्रस्तुत अध्ययन एक वस्तु विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जो कि मूलभूत रूप से रचनावादी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में रचनावादी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के विभिन्न घटकों का पता लगाना था। जिससे वर्तमान समय में रचनावाद को एक शिक्षणशास्त्र विषय के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। विदित है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी रचनावाद के महत्त्व को स्वीकार करती है। अध्ययन प्रक्रिया के रूप में सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का रचनावादी दृष्टिकोण से विस्तृत एवं व्यापक रूप से अध्ययन किया गया। तत्पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निहित विभिन्न रचनावादी बिन्दुओं की पहचान की गई। इसी के साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूर्व में प्रकाशित रचनावाद विषय से सम्बन्धित विभिन्न शोध कार्यों एवं शोध–पत्रों इत्यादि का भी गहनतम रूप से अध्ययन, चिन्तन–मनन, तत्त्व विश्लेषण एवं समीचीन रूप में समीक्षा की गई। तदनन्तर सारभूत रूप में प्राप्त अनेकानेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को आधार मानते हुए रचनावादी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के विभिन्न मूलभूत तत्त्वों का न्याय एवं तर्कसंगत समावेश इस अध्ययन में किया गया है। वास्तव में वर्तमान समय में एक आदर्श शिक्षक एवं शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का स्वरूप कैसा होना चाहिए? इसकी स्पष्ट झाँकी भी इस लेख में देखी जा सकती है, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी सुझाती है।

मुख्य शब्द : रचनावादी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, रचनावादी प्रतिमान एवं रचनावादी आकलन।

प्रस्तावना – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यह सुझाती है कि शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है। शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। रोजगार और वैश्विक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तनों की वजह से यह जरुरी हो गया है कि बच्चे को जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही और साथ ही वे सतत् सीखते रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषय वस्तु को बढ़ाने की जगह जोर इस बात पर अधिक देने की जरूरत है कि बच्चे समस्या समाधान, तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें विविध विषयों के बीच अर्न्तसम्बन्धों को देख पायें कछ नया सोच पायें। जरूरत है कि शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केन्द्रित हो, जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित हो, लचीली हो और समग्रता एवं समन्वित रूप से देखने–समझने में सक्षम बनाने वाली और रूचिपूर्ण अवश्य ही हो। शिक्षा शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे इसके लिए पाठ्यक्रम में विज्ञान और गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और स्वास्थ्य, भाषाओं, साहित्य, संस्कृति और मूल्य का अवश्य ही समावेश किया जाये। शिक्षा से चरित्र निर्माण होना चाहिए, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता करुणा और

संवेदनशीलता विकसित करनी चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है।

रचनावादी शिक्षा – रचनावादी शिक्षा 20वीं शताब्दी में हुए शिक्षा आन्दोलनों का सामाजिक उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के रूप में अभ्यास की एक कला है तथा इसके साथ ही एक अधिगम उपागम भी है। सर्वप्रथम सन् 1993 ई. में न्यूजीलैंड की जनता के द्वारा विज्ञान शिक्षण पाठ्यक्रम के निर्माण हेतु सड़कों पर उतरकर अत्यन्त व्यापक स्तर पर विरोध किया जा रहा था और विरोध के दौरान सिर्फ एक ही नारे को वहाँ की जनता बार–बार दोहरा रही थी कि बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं। तभी से इस क्रान्तिकारी विचार का आविर्भाव माना जाता है। यह शिक्षा ज्ञान की प्रकृति के सन्दर्भ में एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार 'सीखना केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नही है, बल्कि यह एक प्रक्रिया है, जिसमे सीखने वाला स्वयं करके एवं मानसिक रूप से संलग्न रहकर सीखता है या ज्ञान का निर्माण करता है। वह अपने ज्ञान के आधार पर ज्ञात अनुभवों को नये अनुभवों के साथ जोड़कर स्वयं का ज्ञान एवं समझ विकसित करता है तथा उस पर चिन्तन करता हुआ अपने ज्ञान को पुनः संगठित करता है (पाठ्यक्रम विकास का वर्तमान सुझाव, भोज मुक्त विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)। रचनावादी शिक्षा वह सिद्धान्त या व्यवस्था है, जिसमे व्यक्ति कैसे सीखता है? को स्पष्ट किया जाता है। इस शिक्षा व्यवस्था में अभिभावकों की अति चिन्ता का अभाव रहता है।

रचनावादी शिक्षा के उद्देश्य – रचनावादी शिक्षा व्यवस्था के सभी उद्देश्य 'शिक्षक' अथवा 'शिक्षण केन्द्रित' न होकर विद्यार्थी केन्द्रित होता है, जिसमें विद्यार्थियों की स्वतंत्रता, रुचियों, अनुभवों एवं उनके पूर्व ज्ञान आदि को आधार बनाकर शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। उसे वह बनने के लिए उपयुक्त अवसर या वातावरण उपलब्ध कराये जाते हैं जो कि वह अपने जीवन में अपनी रुचियों एवं स्व–प्रयासों के द्वारा बनना चाहता है। इसमें माता–पिता अथवा अभिभावक की इच्छानुरूप कुछ अलग बनने या बनाने के लिए उसे विवश हरगिज नहीं किया जाता, जो कि एक निरर्थक प्रयास भी है। रचनावादी शिक्षा व्यवस्था का विद्यार्थी अपने विषय में स्वयं यह कहता है कि आप मुझे वह क्यों बनाना चाहते हैं? जो कि मै हरगिज बनना नहीं चाहता। आप मुझे वह क्यों नहीं बनाना चाहते? जो कि मै वास्तव में बनना चाहता हूँ अथवा जिसके लिए कि मैं उपयुक्त हूँ।

रचनावादी शिक्षा का पाठ्यक्रम – रचनावादी पाठ्यक्रम ज्ञान को विभिन्न विषयों में विभाजित नहीं करता अपितु उसे एक एकीकृत सम्पूर्ण विषय के रूप में देखता है, क्योंकि जिस दुनियाँ में शिक्षार्थी को काम करने की जरुरत है, वह अलग–अलग विषयों के रूप में दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता है, बल्कि तथ्यों, समस्याओं, आयामों और धारणाओं के एक जटिलतम स्वरुप को स्वीकार करता है। इस प्रकार रचनावादी पाठ्यक्रम एक समग्र एवं व्यापक अवधारणाओं पर आधारित है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया :

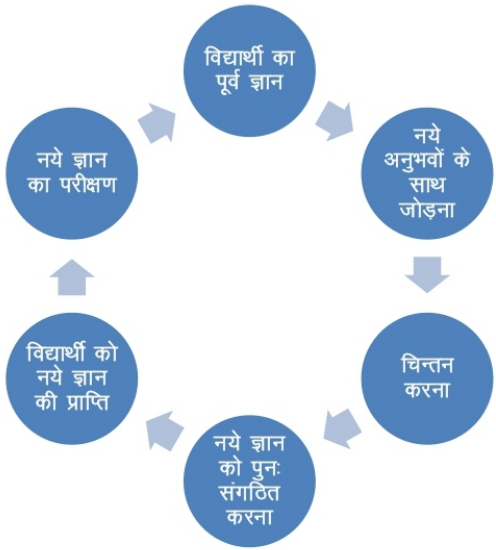

चित्रः शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया

मुख्य रचनावादी प्रतिमान एवं उस पर आधारित विभिन्न गतिविधियाँ

मुख्य रचनावादी प्रतिमान एवं उस आधारित विभिन्न गतिविधियों के रूप में यहाँ पर सिर्फ दो प्रतिमानों को छायाचित्र के माध्यम से दर्शाया गया है। जिनके विभिन्न सोपानों को चक्रीय रूप में क्रमशः अधोलिखित रूप में अभिव्यक्त किया जा रहा है –

मुख्य रचनावादी प्रतिमान	
5E रचनावादी प्रतिमान	**7E रचनावादी प्रतिमान**
	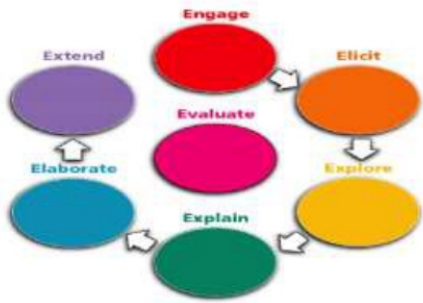
चित्रः 5E रचनावादी प्रतिमान	चित्रः 7E रचनावादी प्रतिमान

रचनावादी कक्षा एवं वातावरण

रचनावाद 'अधिकतम अधिगम के लिए वास्तविक आधार' प्रदान करता है। रचनावाद यह मानता है कि ज्ञान व्यक्तिगत होता है, जो कि अनुभवों के आधार पर विकसित होता है। सीखने वाला व्यक्ति

जब किसी नवीन परिस्थिति के सम्पर्क में आता है, तब उसके पास जो भी संचित पूर्व ज्ञान है उसका स्मरण अनायास रूपों में ही हो जाता है। इस प्रकार नवीन ज्ञान की संरचना पूर्व ज्ञान के एकीकरण से होती है। परिस्थितियाँ एवं वातावरण ज्ञान के निर्माण में सहायक होती है। मस्तिष्क जिन सूचनाओं को उपयोगी समझता है, उन्हें ग्रहण करता है एवं जिन सूचनाओं को उपयोगी नही समझता उन्हें सहज ही रूप में अनदेखा कर देता है। नये अनुभवों के आधार पर मस्तिष्क ज्ञान का परीक्षण करता है और आवश्यकता होने पर उनमें सुधार भी करता है। रचनावादी कक्षा में प्रजातान्त्रिक वातावरण होता है और छात्र स्वायत्त होते हैं। इस प्रकार रचनावादी कक्षा में वातावरण की सदैव परिवर्तनशीलता देखने को मिलती है। यह खुले और मुक्त वातावरण का समर्थन करती है जिसमें ज्ञान का निर्माण भी एक गतिशील, सदैव परिवर्तनशील, अनुभव आधारित एवं आन्तरिक माना जाता है।

रचनावादी शिक्षक का स्वरुप – रचनावाद एक बाल केन्द्रित शिक्षण अधिगम व्यवस्था है, जिसमें शिक्षार्थी की अभिव्यक्ति को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। इस बाल केन्द्रित शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक एक 'सुगमकर्ता' अथवा 'संसाधन प्रदाता' के रूप में बच्चों को सीखने हेतु यथोचित सामग्री एवं सीखने की सहज परिस्थितियों को उपलब्ध कराने और निरन्तर उनका सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन करते हुए उन्हें अपनी क्षमताओं के विकास के अवसर उपलब्ध कराने की भूमिका का निर्वहन करता है। इसमें शिक्षक कम से कम रूपों में मार्गदर्शन करने का प्रयास करता है तथा मार्गदर्शन भी वह तभी करता है जब उसकी जरुरत हो। यह व्यवस्था अप्रासंगिक एवं अनायास मार्गदर्शन का विरोध करती है। बच्चों का स्कूल ही शिक्षकों के शिक्षा प्राप्त करने की भूमि है। स्कूल–कॉलेज तथा देश–विदेश जाकर भी जो शिक्षा शिक्षकों को प्राप्त नही हो सकती वह शिक्षा बच्चों से प्राप्त हो सकती है। बस सीखने की इच्छा तथा विनम्रता शिक्षकों में भी समान रूप से होनी चाहिए (रामदास, जे. 2013)। इसमें शिक्षक, शिक्षार्थी की स्वतन्त्रता एवं नेतृत्त्व गुणों में अभिवृद्धि करता है तथा शिक्षार्थी की प्रतिक्रिया को पहले प्राथमिकता देता है। वह मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मनोभावों को समझकर मार्गदर्शन करने वाला, बालक की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने वाला, बालक के विचारों एवं परेशानियों के प्रति संवेदनशील, ज्ञान के निर्माण का सरलीकरण करने वाला, एक मार्गदर्शक अभिप्रेरक की भूमिका निभाने वाला तथा स्वतन्त्रता पूर्वक चिन्तन को प्रोत्साहित करने वाला होता है। अतः रचनावादी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत से खिसककर सहयोगकर्ता (फैसिलिटेटर) की होती है।

रचनावादी अधिगमकर्ता – रचनावाद न केवल शिक्षार्थियों की विशिष्टता और जटिलता को स्वीकार करती है, अपितु वास्तव में सीखने की प्रक्रिया के एक अभिन्न अंग के रूप में इसे प्रोत्साहित करती है, इसका उपयोग करती है और इसे पुरस्कार देती है। इसमें विद्यार्थी एक विचारक की भूमिका में होता है तथा समूह में कार्य करने को प्राथमिकता देता है। ज्ञान मनुष्य का उत्पाद है जो सामाजिक रूप से निर्मित है। सीखना एक ऐसी प्रक्रिया नही है जो केवल हमारे दिमाग में होती है, न ही यह हमारे कर्मों का एक निष्क्रिय विकास है जो बाहरी ताकतों के द्वारा आकार दिया जाता है, अर्थ पूर्ण सीख तब होती है जब मनुष्य सामाजिक गतिविधियों में लगे होते हैं। कोई भी क्रिया स्वयं करने से ही बच्चों का मनोविकास होता है। वे माता–पिता, शिक्षक अथवा व्याख्या के माध्यम से भी सीखते हैं, पर स्वयं द्वारा खोजकर निकाले गये ज्ञान से बच्चों का जैसा विकास होता है वह किसी दूसरे के सिखाने से सम्भव नही है (रामदास, जे. 2013)। रचनावाद में शिक्षार्थी अत्यन्त वैयक्तिक ढंग से ज्ञान का सक्रिय रूप से सृजन एवं पुनर्गठन करता है। इस प्रकार यह समस्त क्रिया स्पष्ट करती है कि जानने वाले की अन्तःक्रिया तथा आनुभविक तथ्य द्वारा संसार को जाना जाता है। प्रत्येक शिक्षार्थी अपने स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावादी परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत छात्र एक कोरी स्लेट नही होता बल्कि अपने साथ वह पूर्व अनुभव लाता है। वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्त्व और पूर्व ज्ञान के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। अतः

स्पष्ट है कि इसमें प्रत्येक शिक्षार्थी अनूठा होता है जिसे बस समझने की जरूरत होती है। इसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र में बेस्ट होते हैं। अर्थात् You are best in your area and I am best in my are की संकल्पना विद्यमान रहती है।

रचनावादी अधिगम के आकलन की प्रक्रिया– वैश्विक स्तर पर हुए अनुसंधानों में 'योगात्मक आकलन' की बजाय 'रचनावादी आकलन' पर जोर दिया जाने लगा है। रचनावादियों के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य बालक का सर्वांगीण विकास है। अतः आकलन का उद्देश्य भी सर्वांगीण विकास को आकलन करने वाला होना चाहिए, न कि सिर्फ एक पक्षीय आकलन करने वाला। रचनावादी विद्वान् अधिगम को एक सक्रिय प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जो अधिगम के साथ–साथ चलती है और इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को सतत् प्रतिपुष्टि देते हुए आकलन की प्रक्रिया में विद्यार्थी को सहभागी बनाते हुए उसे आगे के अधिगम के लिए तैयार करना है। इस मान्यता ने 'आकलन में रचनावादी आकलन' अथवा 'अधिगम के लिए आकलन' को लोकप्रिय बनाया है। रचनावादी आकलन का मुख्य उद्देश्य है विद्यार्थी के अधिगम को प्रेरित करना एवं उनकी शैक्षिक सम्प्राप्ति को उन्नत करना। अतः अधिगम से पूर्व विद्यार्थियों के लिए यह जानना आवश्यक है कि अधिगम का लक्ष्य क्या है? उन्हें यह क्यों सीखना चाहिए? अधिगम प्राप्ति में वे कहाँ हैं? तथा अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है? वस्तुतः 'अधिगम के लिए आकलन' विद्यार्थियों के अधिगम से सम्बन्धित सूचना प्राप्त करके उनका विस्तृत विश्लेषण करने की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि विद्यार्थी अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ है? एवं उन्हें अपेक्षित स्तर तक ले जाने का सर्वोत्तम तरीका क्या है? इसमें आकलन छोटे–छोटे समूह बनाकर दिए गये कार्यों के द्वारा भी किया जा सकता है। रचनावादी अधिगम के आकलन के विशेष सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि रचनावादी अधिगम के आकलन में गतिशील मूल्यांकन की अवधारणा पर जोर दिया जाना चाहिए, जो कि पारम्परिक परीक्षणों से महत्त्वपर्ण रूप से अलग–अलग शिक्षार्थियों की वास्तविक क्षमता का आकलन करने का एक तरीका है। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशिक्षकों को निरन्तर और संवादात्मक प्रक्रिया के रूप में आकलन करते रहना चाहिए, जो शिक्षार्थी की उपलब्धि तथा सीखने के अनुभव की गुणवत्ता को मापता है। रचनावादी अधिगम का आकलन विद्यार्थियों के कार्यों एवं प्रदर्शनों का पर्यवेक्षण करके रूब्रिक्स, स्वमूल्यांकन, साथी मूल्यांकन तथा पोर्टफोलियो इत्यादि के आधार पर किया जाता है।

निष्कर्ष : इस प्रकार रचनावाद राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा– 2005 का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है, जो यह सुझाती है कि शिक्षा एवं शिक्षण में रचनावादी उपागम को अपनाया जाये। रचनावाद में वह शक्ति है जिसके द्वारा शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर एक पैनी नजर रखी जा सकती है। भोज मुक्त विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश द्वारा 'रचनावादी विषय' पर प्रकाशित एक प्रतिवेदन में यह बताया गया है कि वर्तमान पाठ्यक्रम में रचनावाद का विशेष महत्त्व है। पहले शिक्षा जगत् में रचनात्मक विचारों एवं रचनावाद को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था किन्तु कालान्तर में रचनावाद की उपादेयता स्वयं सिद्ध हुई। परिवर्तन की इस धारा में यदि नई शिक्षा हो सकती है, नई शिक्षा नीति हो सकती है, तो 'नया शिक्षक' भी होना ही चाहिए, क्योंकि सच्चे सन्दर्भो में तो यहीं राष्ट्र के निर्माता भी हैं, जो कि देश की दशा, दिशा एवं भविष्य को गति देने वाले हैं। वैसे भी बिना स्पष्ट 'मिशन' एवं 'विजन' के जो उत्पादन होता है, वह सामान्य या निम्नस्तरीय ही होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी रचनावाद के विशेष महत्व को स्वीकार करती है। निःसन्देह रचनावाद की अवधारणा ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा और विज्ञान सहित कई अन्य विषयों को भी प्रभावित किया है।

'रंजय कुमार पटेल (शोधार्थी), शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चम्पारण, (बिहार)– 845401. मो. 7355738854

''डॉ. मनीषा रानी (सहायक प्राध्यापिका), शैक्षिक अध्ययन विभाग, शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण, (बिहार).

संदर्भ:–

1. पियाजे, जे. (2013). द कंस्ट्रक्शन ऑफ रियलिटी इन द चाइल्ड रूटलेज पब्लिशर, एबिंगडन, न्यूयार्क. ISBN–9781136316944.

2. हरेल, आई.–पैपर्ट, एस. (1991). कंस्ट्रक्शनिज्म एब्लेक्स पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, न्यूयार्क।

3. वर्टीनन, एस. (2017). द फाईव ई इन्स्ट्रक्शन मॉडल. नासा ई क्लिप्स. https://nasaeclips-arc-nasa-gov/teachertoolboÛ/the5e

4. रामदास, जे. (2013). निर्माणवाद और एन.सी.एफ.–2005, शिक्षक क्षमता विकास कार्यशाला. मार्च, 4–9 2013, एससीईआरटी, डायट, बिहार.

5. फॉस्नॉट, सी. टी. (2013). कन्स्ट्रक्टिविज्म थिअरी, परस्पेक्टिव्स एण्ड प्रैक्टिस (सेकण्ड एडिशन). टीचर्स कॉलेज प्रेस, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी.

6. यादव, एस. (2017). रचनावाद. गुरुकुल, अ प्रोफेशनल लर्निंग कम्युनिटी ऑफ एजुकेटर्स. https://gurukulplc-wordpress-com/2017/04/29/%E0%A4%B0%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A6 constructivism/

7. पाठ्यक्रम विकास का वर्तमान सुझाव भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश. http://www-bhojvirtualuniversity-com/slm/B-Ed_SLM/bedtmblu2-pdf

8. मण्डल, आर. (2014). अ स्टडी ऑफ कन्स्ट्रक्टिविज्म अप्रोच टूवर्ड्स टीचिंग लर्निंग इन द सेकण्डरी स्कूल ऑफ शान्ति निकेतन, वेस्ट बंगाल शोध प्रबन्ध, नॉर्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग. http://shodhganga-inflibnet-ac-in/ bitstream/ 10603/ 169894/1/01_title-pdf

9. सोलोमन, जे. (2008). द राइज एण्ड फॉल ऑफ कन्स्ट्रक्टिविज्म स्टडीज इन साईंस एजुकेशन, 23 (1), 1–19. https://www-tandfonline-com/doi/abs/ 10.1080ध03057269408560027

10. ब्रुक्स, जे. जी. – ब्रुक्स, एम. जी. (1999). इन सर्च ऑफ अंडरस्टैंडिंग: द केस फॉर कन्स्ट्रक्टिविस्ट क्लासरूम्स (ई–बुक). एएससीडी स्टोर HTTPS://SHOP-ASCD-ORG/PERSONIFYEBUSINESS/STORE/PRODUCTDETAILS/PRODUCTID/2202

दक्षिण में रामकथा–समकालीन रचनाओं के संदर्भ में एक पुर्नपाठ

– डॉ. ए.एस. सुमेष

रामायण इतिहास है। ऐतिहासिक ग्रन्थ है। रामायण की ऐतिहासिकता केवल मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कथा होने से नहीं है बल्कि रामायण एक उपजीव्य ग्रन्थ है यही इसकी महत्ता है। रामकथा को केन्द्र में रखते हुए या फिर उससे प्रेरणा लेकर लिखी गई रचनाएँ सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है। इसमें कविता है, उपन्यास है, नाटक है, और विचारात्मक आलेख भी है। अर्थात् रामायण को केवल राम कथानक के बदले रामकथा से निर्मित या रामकथा से आभूषित एक चिंतन पद्धति कहना ही ठीक है।

रामायण की पात्र सृष्टि या पात्र चयन की ओर जरा ध्यान दे। इसमें केवल राम का ही महत्व नहीं है। बल्कि सभी पात्र किसी न किसी प्रकार महत्वपूर्ण ही है। जैसे देवजाति की सहायता करने में समर्थ राजा दशरथ है। "रामं दशरथम विद्धि मां विद्धि जनकात्मजम अयोध्यामटविं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम।" जैसा उपदेश पुत्र को देनेवाली सुमित्रा है। पतिव्रता धर्म की मूक साक्षिणी ऊर्मिला है। मैथिली शरण गुप्त जी की ऊर्मिला चाहे भिन्न हो , फिर भी ।

मिथिला मेरा मूल है, अयोध्या है फूल।
चित्रकूट को क्या कहूँ, रह जाती हूँ भूल।।[1]

भातृत्व भावना का साक्षात् रूप लक्ष्मण है रामायण में सीता के बारे में ज्यादा बहुत कहने की जरूरत ही क्या है। सीता भारतीय नारी संकल्पना की अमूर्त देवरूपिणी है। यह सब उस रामायण की कहानी है जिसकी रंग सज्जा भक्तिकालीन कवियों ने की है। अब समकालीन संदर्भ में रामायण पर विरचित कुछ रचनाओं पर जरा ध्यान दिया जाए।

पहले हमने कहा था कि रामायण एक ऐसी कृति है जिसका महत्व एक उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में है। वाल्मीकी कृत राम कथा (जिसको कुछ इतिहासकार मूल

राम कथा मानते हैं) से प्रेरणा पाकर ऐसी अनेक कृतियाँ सभी भारतीय भाषाओं में लिखी गयी है। इस प्रकार दक्षिण में प्रचलित कुछ आख्यानों में सीता रावण की पुत्री है। भारत के बाहर और पूरे भारत में ऐसी अनेक उपाख्यान रामकथा पर प्रचलित है। जिसमें रावण, बाली आदि अन्य पात्रों को भी केन्द्र में रखा गया है। जैसे तमिल भाषा में प्रचलित एक रामकथा है कम्ब रामायण। यह प्रचलित रामकथा का विशेष उपाख्यान है।

केरल के संदर्भ में देखा जाए तो ऐसी अनेक कृतियाँ है जिसको हम इस परिचर्चा में शामिल कर सकते हैं। मलयालम के एक विश्रुत नाटककार का नाम इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है–श्री सी.एन. श्रीकण्ठन नायर। उनका एक नाटक–त्रय है जिसमें मध्य खण्ड के रूप में प्रचलित नाटक है लंकालक्ष्मी। रावण इस नाटक का नायक पात्र है। उनकी व्यथा नाटक की कथावस्तु है। रावण की आत्मवाणी के रूप में इस नाटक की महत्ता है। लंका लक्ष्मी रामकथा का पुर्नपाठ है। प्रचलित रावण एवं राम की अस्मिता यहाँ समस्यात्मक बन जाती है। साथ ही विजेता के इतिहास पर भी इस नाटक में प्रश्च चिह्न लगाया गया है। नाटककार ने चार्तुवर्ण्य, वैदिक परंपरा, ब्राह्मणवाद आदि पर भी कटु विचार इस नाटक के माध्यम से किया है। स्मृति–वेदों के द्वारा राम को श्रेष्ठ एवं रावण को हीन बताने की भक्ति परंपरा की ऐतिहासिक कूटनीति को इस नाटक ने ललकारा है।

हमारे पास रावण और उसके वंश को असभ्य के रूप में चिह्नित करने और चतुरवर्ण्यम की श्रेष्ठता, वैदिक परंपरा के अवशेष, को सांस्कृतिक एकता के मानकों में बदलने का एक गलत ऐतिहासिक तरीका है। रावण इसका सबसे बड़ा प्रतीक है। स्मृतियों और वेदों के माध्यम से राम के कर्मों की पुष्टि करने वाले तथाकथित इतिहास में रावण के कष्टों को वंशवृक्ष के तने पर गिरती जल की एक बूंद के रूप में देखने की क्षमता तक नहीं है। रावण के कर्म को, जाति में नीच होने के कारण या एक राक्षस होने के नाते, इतिहास नकारते हैं। दक्षिण की राम कथाओं में रावण कभी–कभी राम से ऊपर है। वह उनके राक्षसी रूप के वैभव के कारण नहीं बल्कि, शुद्ध मानवता के कारण है। इस प्रकार रावणायन कालानुक्रमिक रूप से होता रहता है।

रामायण पर आधारित एक अन्य औपन्यासिक रचना भी है मलयालम में। रमेशन ब्लात्तूर नामक रचनाकार की कृति है "पेरुमाल"। मलयालम में उपन्यास का नाम "पेरुम आल" लिखा गया है। इसका अर्थ प्रजापति माना जा सकता है। इसमें रावण प्रजापति है। रावण इस उपन्यास में अपने वंश एवं कुल की संपत्ति को संरक्षित करने के लिए बाध्य पेरुमाल–अर्थात् प्रजापति है। इस उपन्यास के आमुख में रमेशन ब्लात्तूर ने लिखा है–"भक्तिकाल के लोगों ने वाल्मीकि के राम को अपनी इच्छा के अनुसार वेष बदलकर प्रस्तुत किया है। अध्यात्म रामायण के लेखकों ने कुछ और स्वतंत्रता दिखाई तो किलिप्पाटु (शुक संवाद) के रूप में एषुत्तच्छन (मलयालम में लिखित प्रसिद्ध रामायण उपाख्यान काव्य इनका है।) ने उसके स्वत्व को ही बदल डाला।"[2]

इतिहास चाहे कुछ भी हो, दक्षिण के अधिकांश समकालीन रचनाकारों ने राम एवं रावण के संघर्ष को आर्य–द्राविड संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है जो रामायण का समकालीन पुनर्पाठ है।

सारा जोसफ की एक औपन्यासिक रचना है ऊरु कावल। यह उपन्यास 2008 में प्रकाशित है। इस उपन्यास में नायक बाली का पुत्र अंगद है। अंगद की व्यथा बाली की पत्नी तारा की स्त्री पक्षवादी दृष्टि आदि के द्वारा विकसित एक कथानक इस उपन्यास की विशेषता है। वानर जाति के प्रबल नेता है बाली। वे वानर राजा है। अपने मित्र एवं बाली के कनिष्ठ सुग्रीव की रक्षा के लिए राम ने बाली का वध किया था। बाली की मृत्यु होने के बाद वानर जाति की मानसिकता क्या रही थी? वानर जाति ने राम को किस प्रकार देखा होगा? आदि विभिन्न सवालों को लेकर विकसित कथानक सारा जोसफ के उपन्यास ऊरु कावल की

विशेषता है। अर्थात् यह मलयालम उपन्यास वानर पक्ष से लिखा गया रामायण का समकालीन साहित्यिक–पाठ है।

समकालीन संदर्भ में चर्चित एक भारतीय–अंग्रेजी उपन्यास है। जिसका नाम है असुरा। (Asura & Tale of the Vanquished The Story of Ravana & his people) उपन्यासकार का नाम है आनंद नीलकण्ठन। 2012 में प्रकाशित यह उपन्यास उस साल प्रकाशित सबसे लोकप्रिय उपन्यास रहा। इस अंग्रेजी उपन्यास की चर्चा अन्य मलयालम रचनाओं के साथ इसलिए कर रहे हैं कि इसका रचनाकार श्री आनंद नीलकण्ठन केरल के निवासी है।

असुर जाति के दो पात्र एक रावण दूसरा एक सामान्य राक्षस भद्रा। भद्रा वास्तव में एक कल्पित पात्र है। इन दोनों के स्वागत विचार या आत्म वाणी है असुरा नामक उपन्यास। संपूर्ण असुर जाति के लिए राम कौन है। यही इस उपन्यास की मूल कथा है। राक्षसों के लिए राम खलनायक है। वे राम रूपी सत्ता या अधिकार को स्वीकारने में मजबूर एक जाति बन जाती है। इस उपन्यास को पढने के बाद हमें ऐसा लगेगा कि रावण के पक्ष में या राक्षस कुल में यदि कोई वाल्मीकि होता तो रामकथा का इतिहास भी कुछ अलग ही हो जाता। उपन्यासकार ने स्वयं इस उपन्यास को रावणायन नाम दिया है। अतः असुरा समकालीन संदर्भ में लिखा गया रावण केन्द्रित राम कथा है। रावण की अपनी वेदना को उपन्यासकार ने इस प्रकार वाणी दी है–For thousands of years] I have been vilified and my death is celebrated year after year in every corner of India- Why\----Was it because I freed a race from the yoke of caste & based Deva rule\ You have heard the victor*s tale] the Ramayana- Now hear the Ravanayana] for I am Ravana] the Asura] and my story is the tale of the vanquished.[3]

रामायण इस प्रकार हर काल में, हर समय संदर्भ में, हर विभीषिका में, हर त्रासदी में, हर जय–पराजय में प्रयुक्त कथानक है। उपमान और उपमेय दोनों के रूप में रामायण हमारे सम्मुख है। उपर्युक्त रचनाओं से यह बात स्पष्ट विदित है कि रामायण अनेक रामकथा आख्यानों के लिए प्रेरणादायी रचना है। कभी–कभी मूल रामायण कृति को अर्थात् संस्कृत में लिखित वाल्मीकी रामायण को (यही मूल पाठ माल लिया जाए तो) हम भूल जाते हैं और विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में विभिन्न संप्रदायों और विचाराधाराओं के अनुसार लिखी गई रामकथाओं को मूल ग्रंथ मानकर विचार–विमर्श कर बैठते हैं। लेकिन रामकथा जाने अनजाने हर पुर्नपाठ के केन्द्र में है।

दक्षिण भारत में केरल की नाट्य पद्धति का विशेष महत्व है। केरल में सर्वप्रचलित एक नाट्यविधा है कथकलि। कथकलि में रावण एवं बाली से संबन्धित एकाधिक कथा प्रयोग में हैं। रावण एवं बाली वास्तविक या प्रचलित रामकथा में खलनायक जरूर है या फिर उस विरोधी पक्ष में है। लेकिन कथकलि में रावण को हमने रजस्व भाव से युक्त वेषभूषा (आहार्य) दिया है। उस आहार्य कल्पना का नाम है–कत्ति। राक्षसीय वृत्ति से युक्त पात्रों के लिए अलग आहार्य कल्पना कथकलि में है उसको करि, या चुवन्न ताडि कहते हैं। लेकिन राक्षस होते हुए भी रावण को रजस्व भाव से युक्त वेष दिया गया है। कथकलि में मंडोदरी के साथ प्रणय प्रसंग में रावण को देख सकते हैं। उस समय रावण अपनी स्वाभाविक प्रकृति में केवल एक राजा मात्र है, इस प्रकार दिखाया जाता है।

केरल की लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है राम कथा। केरल के मुसलमान जाति के लोगों के बीच भी राम कथा प्रचलित है। माप्पिला रामायण नाम से मौखिक परंपरा के माध्यम से उत्तर केरल में राम कथा प्रचलित है। लोरी के रूप में आज भी यह उत्तर केरल के मुसलमान लोगों के बीच में प्रयुक्त किया जाता है। कलिकट विश्वविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य प्रोफसर एम एन कारशेरी ने इसका संपादन भी किया है। माप्पिला रामायण नाम से।

इस प्रकार संस्कृति, कला, साहित्य आदि सभी

सृजनात्मक क्षेत्रों में राम कथा एक चिर स्मरणीय कृति है। इसलिए आज भी राम कथा के अध्येताओं के लिए, चाहे वह कामिल बुल्के हो, चाहे एक राष्ट्रीय संगोष्ठी हो, यह आधार ग्रन्थ है। पुनर्पाठ करने वाले माने या न माने, यह बात सत्य है कि उपर्युक्त सभी रचनाओं के मूल पाठ वही रामायण है जिसमें राम कथा का उल्लेख हो। रामायण एक मूल पाठ है यही इस कृति की खासियत है।

– डॉ. ए. एस. सुमेष
सह आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
एम.ई.एस. महाविद्यालय नेडुमकंडम इडुक्की
(केरल)–685553 मोबा. 9744168522

संदर्भः–

1. साकेत, नवम सर्ग, मैथिलीशरण गुप्त।
2. पेरुमाल, रमेशन ब्लात्तूर डी सी बुक्त कोट्टयम, 2010
3. From the Blurb of the Novel, Asura by Anand Neelakantan-

वैदिक साहित्य में नारी

– डॉ. मीरा त्यागी

वैदिक साहित्य में स्त्रियों का उन्नत स्थान रहा है। प्राचीनकाल से ही 'मातृ देवो भव', 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गदपि गरीयसी' एवं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इस प्रकार की सूक्तियाँ नारी के स्थान का वर्णन करती हैं। शास्त्रों में भी नारी शक्ति का महान् गौरव देखने को मिलता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी की प्राचीन काल से ही नारी मातृशक्ति का प्रतीकभूत रही है। स्त्रियों को ऐसे शब्दों से सम्बोधित करते हैं जिससे सौन्दर्य, पवित्रता तथा मंगल का बोध होता है, जैसे कल्याणी, सुन्दरी, सुभगे एवं आनन्दमयी इत्यादि। अग्नि देवता की तुलना घर की ऐसी पत्नी से की गई है जो सभी का आभूषण है। वैदिक काल में नारी परिपक्व होने पर ही विवाह किया करती थी। पूषण एवं सूर्या के कवित्वमय वर्णन से प्रेम–विवाह का भी बोध होता है। नारियों को अपना वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। ऋग्वेद में कहा गया है कि अनेक ऐसी कन्याएँ थीं जो कि सुयोग्य व्यक्तियों के बदले धनी व्यक्तियों को महत्व देती थी।[2] ऋग्वेद में नारी की श्रेष्ठ स्थिति का परिचय मिलता है। नारी के अनेकों रूप देखने को मिलते हैं। नारी के द्वारा ही पुत्री (कन्या), पत्नी और माता[3] के रूप में परिवार के दायित्व को भली प्रकार से निभाने की चर्चा है।[4] यहाँ तक कि वेदों में नारियों के अधिकारों की बात भी कही गयी है, ताकि वे अपना सम्पूर्ण विकास कर सकें एवं समाज सेवा के कार्यों में भी अपना सहयोग दे सकें। वैदिक कालीन समाज में स्त्री–पुरूष में किसी भी प्रकार का विभेद देखने को नहीं मिलता। यहाँ तक कि ऋग्वेद में वेदाध्ययन – अध्यापन में भी नारी व पुरुष को समान बताया है।[5] यजुर्वेद भी स्त्री–पुरूष में समानता की बात करता है।[6] अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करके विवाह करें। ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन से ही कन्यायें युवक पति को प्राप्त करें।[7] इसी बात का वर्णन यजुर्वेद में भी मिलता है।[8]

कन्या ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़कर, पूर्णविद्या ग्रहण कर, उत्तम शिक्षा को प्राप्त करें, तथा युवावस्था में अपने प्रिय विद्वान, युवा पुरुष को प्राप्त करें। इसलिए वेदों में ब्रह्मचर्य और विद्या ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है, बाद में स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् अर्थात् स्त्री और शूद्र को न पढायें इत्यादि झूठे वाक्यों को वेदावाक्य बताकर नारियों को वेदाध्ययन से बाहर कर दिया गया था, जो स्त्री जाति के लिए अन्यायपूर्ण था। वेदों में कहीं भी स्त्रियों के वेद न पढ़ने की बात दृष्टिगोचर नहीं होती। वेदों में नारी यज्ञीय है अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय है। वेदों में नारी को ज्ञान प्रदान करने वाली, घर में सुख–समृद्धि लाने वाली, विशेष तेजवाली देवी, विदुषी, सरस्वती, इन्द्रीयाणि, उषा जो सब को जगाती है, इत्यादि संज्ञाओं से विभूषित किया है। स्त्रियों पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। वे सभी कार्यों में सहयोग कर सकती थी अध्ययन – अध्यापन से लेकर युद्धक्षेत्र तक वे सहयोग कर सकती

थी। वेदों में नारी को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नारी की शिक्षा दीक्षा से लेकर उनके शील, गुण, कर्त्तव्य, अधिकार और समाज में उनकी भूमिका का सुन्दर वर्णन वेदों में उपलब्ध है। वेद नारी को सम्राज्ञी तक बनाने का अधिकार प्रदान करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मध्यकालीन युग में हमारे देश में पतनशील प्रवृत्तियों के विकासक्रम में सामाजिक संरचना हर तरह से प्रदूषित होती गई, फलस्वरूप हम वर्तमान में भी उसका परिणाम भोग रहे है। हमारे वैदिक काल में नारी का चरित्र–चित्रण अलौकिक था। वैदिक वांग्मय में नारियों के प्रति जो आदर्श, मर्यादा, नियम, सहानुभूति–वात्सलय, दया इत्यादि का जो वर्णन वेदों में मिलता है, ऐसा वर्णन विश्व के अन्य किसी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि आज वर्षों के बाद भी हमारी वैदिक संस्कृति सर्वोपरि विद्यमान है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि कन्या का पाणिग्रहण संस्कार का निर्वाह प्रधान रूप से माता–पिता के द्वारा होना चाहिए। माता–पिता के अभाव में ज्येष्ठ भ्राता भी यह कार्य कर सकता है, परन्तु संहिता में ऐसा वर्णन मिलता है कि कन्या को भी अपने जीवन साथी का चयन स्वयं करने का अधिकार है।[9] स्त्री–पुरुष दोनों के लिए ही वैदिक संहिताओं में अध्ययन अध्यापन की बात कही गई है। ऋग्वेद में कहा गया है कन्या स्वस्थ व सुन्दर होनी चाहिए। कुष्ठ रोग से पीड़ित अपाला को अनेक प्रकार से पतिद्वेष का शिकार होना पड़ा।[10] अपाला अपने शरीर को रोगमुक्त करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करती है। इन्द्र के द्वारा अपाला को सूर्य के समान तेजस्वी त्वचा प्राप्त होती है।[11] ऋग्वेद में तो यहाँ तक कहा गया है कि नारी को स्वयं ही इच्छानुसार भ्रमण आदि का अधिकार है। वह श्रोत्री वक्ती आदि के रूप में सभाओं में जाने के लिए स्वतंत्र है।[12]

नारी वेद आदि सब शास्त्रों के पढने का पूरा अधिकार रखती है ताकि वह अपनी संतानों को शिक्षित करने में सक्षम हो सकें, क्योंकि बालकों को माता ही उत्तम शिक्षा प्रदान कर सकती है, इसलिए माता को बच्चे की पहली गुरू की संज्ञा दी जाती है। माता बच्चे को उत्तम शिक्षा देकर सभ्य बना सकती है जिससे वह किसी अंग से कुचेष्टा न कर पाये। बच्चा जब बोलने लगे तो माता ऐसा उपाय करे जिससे जिह्वा कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण करे। बच्चा जब समझने लगे तब सुन्दर वाणी, छोटे–बड़े का सम्मान उचित व्यवहार आदि की शिक्षा दे सकती है। वैदिक काल में वेदाध्ययन के लिए सभी व्यक्तियों के लिए यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक था, अतः नारी के भी यज्ञोपवीत धारण करने व यज्ञ कर्म के सम्पादन में सहयोग देने का वर्णन प्राप्त होता है।[13]

अथर्ववेद में कहा गया है कि विधवा नारी के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। विधवा नारी संतान प्राप्ति के लिए और आजीविका के लिए नवीन पुरूष से विवाह कर सकती है।[14] अथर्ववेद में विधवा विवाह के अतिरिक्त पुनर्विवाह का वर्णन भी प्राप्त होता है। यदि सम्बन्ध विच्छेद हो जाए या कोई अन्य कारण भी हो तब भी नारी के दूसरे पुरूष से विवाह करने की बात कही गयी है।[15] पुनर्विवाह करने वाली स्त्री को पुनर्भू: की संज्ञा दी गई है।[16] वेदों में व्यभिचारिणी स्त्रियों को महानग्नी[17] अतीत्वरी[18] और रामा[19] आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है, तथा कहा गया है कि व्यभिचारिणी स्त्री को दण्ड मिलना चाहिए। वह दण्ड की अधिकारिणी है।[20] नारी जाति के विषय में वेदों को लेकर बहुत सी भ्रान्तियाँ हैं। भारतीय समाज में वेदों पर यह दोषारोपण किया जाता हैं कि वेदों के कारण नारी जाति पर सती प्रथा, बाल –विवाह, देवदासी प्रथा, अशिक्षा, समाज में नीचा स्थान, विधवा का अभिशाप, नवजात कन्या की हत्या आदि अत्याचार हुए हैं। किसी ने यह प्रचलित कर दिया था कि जो नारी वेद मंत्रों को सुन ले तो उसके कानों में गर्म सीसा डाल देना चाहिए। जो नारी वेद मंत्रों का उच्चारण करें तो उसकी जिह्वा को काट दिया

जाए। कोई नारी को पैर की जूती कहने में अपना गौरव मानता था तो कोई उसे ताड़न की अधिकारी बताता था। इतिहास गवाह है कि नारी की अपमानजनक स्थिति पश्चिम से लेकर पूर्व तक के सभी देशों में इतिहास में देखने को मिलती है। इस विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वेदों में इन अत्याचारों में से एक का भी समर्थन नहीं किया गया है अपितु वेदों में नारी को इतना उच्च स्थान दिया गया है कि विश्व की किसी भी धार्मिक पुस्तक में उसका अंश भर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

वैदिक संहिताओं के अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि अनेकों ब्रह्मवादिनी नारियाँ भी हुई हैं जिन्होंने अपने त्याग, तपस्या आदि महान् कार्यों के द्वारा समाज में सुख–सौभाग्य की वृद्धि की थी। जिनके चरित्र से सदैव ही सम्पूर्ण मानव समाज को शिक्षा मिली है। वैदिक संहिताओं में विवाहित व अविवाहित दो प्रकार की नारियों की चर्चा की गई है। विवाह के उपरान्त जिन नारियों का अध्ययन कार्य रूक जाता था, उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहा जाता था तथा जो नारी अपने पिता अथवा भाई के घर अविवाहित रहकर निरन्तर अध्ययन–अध्यापन का कार्य करती थी उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। ब्रह्मवादिनी नारियाँ आजीवन कुँवारी रहकर जनकल्याण के लिए अनेकों कार्य करती थीं। ब्रह्मचारिणी नारियाँ वेदाध्ययन करतीं, काव्य रचना करती तथा त्याग, तपस्या के द्वारा ऋषिभाव प्राप्त करके मंत्रों का साक्षात्कार भी कर लिया करती थी। उस समय महिलाएं पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं तथा उनके रथों का संचालन भी करती थी। विश्पला पति के साथ युद्ध में गई थी, जहाँ युद्ध भूमि में उसकी टाँग टूट गई थी, जिसे अश्विनी कुमारों ने ठीक किया था। मुद्गल पत्नी इन्द्रसेना ने सूक्ष्म रथ संचालन और अस्त्र संचालन करके वीरतापूर्वक इन्द्र के शत्रुओं का नाश किया था। उनके शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर उनसे अपहृत गाएँ छुड़ा ली थीं। रानी कैकयी ने राजा दशदथ के रथ का संचालन किया था।

यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि नारी राजकार्य में सहायता भी करती थी।[21] राजा के समान नारी भी न्यायव्यवस्था में हाथ बटाँती थी।[22] ऋग्वेद में शूरवीर स्त्रियों की सेना के विषय में चर्चा की गई है कि शूरवीर स्त्रियों की सेना भी होनी चाहिए तथा उन्हें यद्ध भी करना चाहिए।[23] वैदिक नारी शौर्य वीरतायक्ता है. घोरा है. अजेया है। उसका उदघोष है कि मैं शत्रुरहित हूँ, शत्रुसंहारिका हूँ, विजयिनी हूँ।[24] वेदों में जहाँ एक ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिव को जगत की उत्पत्ति, स्थिति व लय के रूप में पूजा गया है, वही नारी को ज्ञानाधिष्ठाती, सरस्वती, ऐश्वर्याधिष्ठात्री श्री तथा शक्ति अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में स्तुति की गई है।[25]

ऋग्वेद में अपाला और घोषा नारियों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है।[26] घोषा कुष्ठ रोग से पीड़ित थी तथा अपना पति पाने में असमर्थ थी, अश्विनों (वैद्य) से वह स्वयं को आरोग्य करने के लए प्रार्थना करती है, वह घर में ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो रही थी। वहीं चर्मरोग द्वारा पीड़ित अपाला नामक स्त्री पति द्वारा त्याग दी गई। इस प्रकार नारी के प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक समाज भी पूर्णतया आदर्श समाज नहीं था। अनेकों स्त्रियाँ अपने पति की जुआ खेलने की आदतों से परेशान रहती थी। ऋग्वेद में कहा गया है कि जुआ खेलने की उत्तेजना उनके सिर में सोमरस के घुँट के समान जाती है।[27] इस प्रकार वैदिक काल में भी स्त्रियाँ पति द्वारा निन्दनीय कर्मों से दुःखी थी।

फिर भी स्त्रियों के अधिकारों की बात करें तो उन्हें सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था एवं विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह करने के अधिकार की बात भी वेदों में कही गई है। उनके स्वयं विवाह करने के लिए स्वतंत्र होने का भी वर्णन मिलता है। धार्मिक कार्यों में पत्नी की अनिवार्यता का वर्णन मिलता है। स्त्रियों को सम्पत्ति से लेकर विधवा पुनर्विवाह करने तक के अधिकरों की बात

वेदों में कहीं गई है। वेदों में भावनात्मक दृष्टि से भी नारी का पुरूषों के समान ही आदर भाव देखने को मिलता है। वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त गौरवास्पद वर्णित हुई हैं। वेद में नारी को देवी स्वरूप बताया है, विदुषी कहा कहा है, प्रकाश से परिपूर्ण कहा है, वीरागंना कहा गया है, वीरों की जननी कहा है, आदर्श माता कहा है जो कर्त्तव्यनिष्ठ है, धर्मपत्नी है, सदगृहणी है, सम्राज्ञी है और अपनी संतान की प्रथम शिक्षिका है। इस प्रकार अध्यापिका बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान – विज्ञान की शिक्षा देने वाली है, उपदेशिका बनकर सबको सद्मार्ग पर प्रेरित करती है। मर्यादाओं का पालन करने वाली है, जग में सत्य व प्रेम की ज्योति जलाने वाली है। यदि वह गुण व कर्म के अनुसार क्षत्रिया है तो धनुष विद्या में निपुण होकर राष्ट्र की रक्षा भी करती है। यदि वैश्य गुण कर्म वाली है तो उच्चकोटि कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि में योगदान देती है और शिल्पविद्या आदि की भी उन्नति करती है। वेदों में नारी पूज्य है, स्तुति करने योग्य है, सुशील है, यशोमयी है।

पुरूष व नारी के संबंधों के विषय में वेदों में आलंकारिक वर्णन है। पुरूष द्युलोक है तो नारी पृथ्वी है, दोनों के सामंजस्य से ही सम्पूर्ण जगत बना है, दोनों के सामंजस्य से ही पूर्णता है। विवाह इसी सामंजस्य का एक प्रतीक है। वेदों में नारी के दो जन्म माने गए हैं– एक शरीरतः और दूसरा विद्यातः। विद्यातः जन्म होने पर नारी का पर्दापण जैसे ही विवाह – वेदी पर होता है वैसे ही उसका कुल, व्रत, यज्ञ आदि सब–कुछ बदल जाते हैं। उसके दो कुल हो जाते हैं। एक पितृकुल और एक पतिकुल। वह दोनों कुलों को जोड़ने वाली कड़ी है। इस प्रकार सभी क्षेत्रों में नारी को समान अधिकार की बात दृष्टिगोचर होती है। अतः वैदिक कालीन समाज में पितृप्रधान व्यवस्था होने के बाद भी विविध रूपों में नारी की स्थिति गौरवपूर्ण, सम्मानजनक होने के संकेत दृष्टिगोचर होते हैं।

संदर्भः–

1. डॉ. मीरा त्यागी, असिस्टेंट प्रोफेसर, तदर्थ, फैक्लटी, दर्शन शास्त्र विभाग, कन्या गुरूकुल परिसर, ज्वालापुर, हरिद्वार। Email : Meera.tyagi238@gmail.com Mob. 07895694051
2. ऋग्वेद – 10/95/15
3. यजुर्वेद – 4.20, 6.34, 23.21
4. यजुर्वेद – 19.15, 11.62
5. देवा एतस्यामवदन्त पूर्वेसप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः। भीवा जाया ब्राह्मस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योमन् ।। ऋग्वेद– 10–109–4
6. यजुर्वेद – 6–14
7. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्ववेद–11–5–18
8. यजुर्वेद – 23–36
9. कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण। भद्रा वधूभवति यत्सुपेशाः स्वयं मित्रं वनुते जने चित्।। ऋग्वेद– 10–27–12
10. कुवित पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमाम है। ऋग्वेद– 8–91–4
11. अपालामिन्द्र त्रिपूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् । ऋग्वेद– 8–91–7
12. गुहा चरन्ती मनुषो न योषा समावती विद्यायेव संवाक्। ऋग्वेद– 1–167–3
13. शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक सादयामि। अथर्ववेद– 6–122–5
14. इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्यप्रेतम्। धर्म पुराण मनु पालयन्ती तस्यै प्रजा द्रविणं चेह धेहि। अथर्ववेद– 18–3–1
15. या पूर्व पतिं वित्वाथान्यं विन्दते परम्। समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पति।। अथर्ववेद– 1–3–27, 28
16. अथर्ववेद– 9–5–28
17. अथर्ववेद– 14–1–35
18. यजुर्वेद–30–15
19. तै.सं.– 5–6–8–3
20. यजुर्वेद–23–21
21. यजुर्वेद–13–18
22. यजुर्वेद–13–17
23. स्त्रियों हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करत्रबला अस्य सेनाः । ऋग्वेद– 5–10–1
24. असपत्ना सपत्नह्नी जयन्त्यभिभूवरी आवृक्षमन्यासा वृ! राधो अस्थेयतामिव । ऋग्वेद– 10–159–5
25. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतकृतो बभूविथ। सामवेद–4–2–13–2
26. संस्कृत कविताएं– जे.पी. चौधरी पृ.सं.–80–89, कलकत्ता, 1939
27. ऋग्वेद– 10–34–13

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में चित्रित बेड़िया समाज और नारी–विमर्श

– लक्षेश्वरी (शोधार्थी)

सारांश : शरद सिंह हिन्दी साहित्य जगत में एक सशक्त नारी विमर्श की लेखिका मानी जाती है। उनके लेखन में स्त्री की एक अलग ही छवि देखने को मिलती है। इन्होंने हाशिये पर ढ़केल दिए गये नारी की समस्या पर अपनी लेखनी चलाई है। नारी जीवन और उसके विविध रुपों को पहचानने की अदम्य क्षमता और उसे व्यक्त करने की कला लेखिका में विशेष रुप से विद्यमान है। पिछले पन्नें की औरतें उपन्यास में लेखिका ने नारी के कतरा–कतरा व्यतित करती जिंदगी, आर्थिक समस्या से जूझती, देह व्यापार करने की विवशता, नारी के प्रति अमानवीय एवं हिंसक व्यवहार, अपनी पहचान को तलाशती आदि महिलाओं की समस्या को लेखिका ने अत्यंत मार्मिकता के साथ उकेरा है। वर्तमान समय में भी नारियां घुट–घुट कर जीवन जीने के लिए विवश हैं। जीवन की यथार्थ और कटु सत्य को अभिव्यक्त करने में लेखिका ने अदम्य साहस का परिचय दिया है। बेड़िया समुदाय की नारियों को इन्हीं समस्याओं के कारण वर्तमान समय में भी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इसलिए ये समाज आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक रुप से सशक्त नहीं हो पा रहा हैं। ऐसी स्थिति में महिला सशक्तिकरण का सपना अधूरा सा प्रतीत होने लगता है। प्रस्तुत शोध आलेख बेड़िया समाज की औरतों की समस्या को ही उजागर नहीं करता है अपितु उन समस्याओं को सुलझाने का सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : शरद सिंह, पिछले पन्नें की औरतें, बेड़िया समुदाय, नारी समस्या, नारी विमर्श।

प्रस्तावना

शरद सिंह आधुनिक कथा लेखन के क्षेत्र में प्रगतिशील लेखिका के रुप में अपनी विशेष छाप छोड़ी है। इन्होंने समाज में फैले उन समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है जो प्रायः अछूते रह जाते हैं। पिछले पन्नें की औरतें उपन्यास में लेखिका ने मध्यप्रदेश के बुन्देल खण्ड की बेड़िया जनजाति समुदाय की नारी समस्या को केन्द्र में रखकर बेड़िया समाज की नारियों के संघर्ष और जीवन की कटु सत्य को यथार्थ रुप में चित्रत किया है। बेड़िया समाज सदियों से उपेक्षित, अपमानित, वंचित और आर्थिक, शारीरिक रुप से शोषित होता रहा है। लेखिका ने बेड़िया समाज की उन औरतों की कथा व्यथा और जीवन दशाओं से साक्षात्कार कराया है जो समाज में उपस्थित होने के बावजुद भी अनदेखा कर उनके अस्तित्व को नकार दिया गया है। उपन्यास में लेखिका ने नये कथ्य की खोज को अत्यंत गहराई के साथ व्यक्त किया है।

बेड़िया समाज में जीवनयापन के लिए देह व्यापार, चोरी और राई नृत्य किये जाने की परम्परा रही है। यह समुदाय अपराधी प्रवृति की है ऐसा माना जाता है, अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पैसों के लिए अपराध करते हैं। बेड़िया समाज स्वयं को पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों के वंशज मानते हैं। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के मध्य युद्ध के दौरान राजपूत सैनिक मारे गये इनमें से अधिकांश महिलाओं ने जीवन व्यतीत करने के लिए अन्य समुदाय के पुरुषों के साथ संबंध स्थापित कर लिया। उनसे उत्पन्न संतान को किसी ने भी नहीं स्वीकारा और उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया, यही बहिष्कृत लोग ही आगे चलकर बेडिया कहलाये। वर्तमान समय में बेडिया समाज मध्यप्रदेश के पथरिया, फतेहपुर, लिधोरा, हबला, लुधारी, देवेन्द्र नगर, बिजावर...जैसे कुछ गाँवों में निवास कर रहे हैं। इन्हीं उपेक्षित बेड़िया स्त्रियों की जीवन दशाओं और उनसे संबंधित समस्याओं को लेखिका ने बड़े ही बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है ।

पुरुषों के निकम्मेपन, अवारागर्दी और आर्थिक रुप से कमजोर स्थिति की वजह से ही बेड़िया स्त्रियों को मजबूरन वेश्यावृत्ति करना पड़ता है। इसलिए इस

समुदाय की औरतें परम्परागत रुप से देह व्यापार से जुड़ती चली गयीं। किसी भी समुदाय वर्ग की स्त्री स्वेच्छा से वेश्या बनना नहीं चाहती है। बेड़िया समाज की औरतें अपनी परम्परा, आर्थिक कमजोरी और सामाजिक दबावों के कारण देह व्यापार करने के लिए बाध्य होती है। इसलिए इस समाज के लोग वैश्यावृत्ति को गैर कानूनी नहीं मानते और न ही हेय दृष्टि से देखते हैं–'अन्य समाज में वैश्यावृत्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है किन्तु बेड़िया समाज में वेश्यावृत्ति को निम्न अथवा हेय नहीं माना जाता... वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियाँ बेड़िया समाज और परिवार में अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त होती हैं...वे अपनी देह का उपयोग व्यावसायिक यौन संबंधों के लिए तो करती ही रही है साथ ही चोरी करने में भी अपनी देह का भरपूर उपयोग करती हैं।' समाज की मानसिकता और पूर्वाग्रह ने ही बेड़िया समुदाय को अपराध पूर्ण और गैर कानूनी कार्यों को करने हेतु बाध्य कर दिया है। इस समाज की औरतों का देह व्यापार शरीर से ही खिलवाड़ नहीं है बल्कि अपने जीवन से भी खिलवाड़ करना है। क्योंकि बेड़िया समाज की औरतें असुरक्षित यौन संबंध बनाती हैं और यौन क्रिया के दौरान ग्राहकों के मना करने एवं उन्हें यौन सुख में कोई खल्ल ना पड़े इसके लिए कंडोम का प्रयोग नहीं करती हैं। ग्राहक भी अपनी अज्ञानता वश कंडोम को गर्भ निरोधक मानते है और इसके इस्तेमाल को अपने सुख में बाधा मानते हैं। जबकि कंडोम बीमारियों से बचाव का कार्य करती है परंतु ज्ञान के आभाव में ये औरतें असुरक्षित यौन संबंध बना कर गंभीर बीमारियों जैसे– गोनोरिया, श्वेत प्रदर, एड्स, सिफलिस और गर्भाशय–ग्रीवा कैंसर आदि को न्यौता देती हैं और अपने जीवन को खतरे में डालती हैं। बेड़िया समाज नारी प्रधान परिवार व्यवस्था होने के कारण उनको इस प्रकार की माँगों की पूर्ति कर धनार्जन करना पड़ता है। लेखिका बेड़िया समाज की औरतों की सेहत और उनके जीवन पर मंडरा रहे मौत रुपी बीमारियों को लेकर काफी चिंतित हैं उन्हें इस दलदल से निकालने और स्वास्थ्य संबंधित देखभाल की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए कहती है 'देह व्यापार में संलग्न बेडिया औरता को देह व्यपार के दलदल से निकालने से भी अधिक महत्वपूर्ण है उनके स्वास्थ्य की नियमित जांच किया जाना, ताकि उनमें एड्स जैसे रोगों की स्थिति का पता चल सके तथा आवश्यक है, उनमें स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता लाना ताकि वे एड्स जैसे रोगों के विरुद्ध सतर्क हो सकें। इस समुदाय की महिलाओं के जीवन सत्य को लेखिका ने मार्मिकता के साथ उकेरा है।

रुढ़ियों से ग्रस्त भारतीय समाज में पुत्रों को जो महत्व दिया जाता है वही महत्व पुत्री को नहीं मिलता किन्तु भारतीय समाज में उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर बेड़िया समुदाय पुत्री जन्म लेने पर उत्सवों का आयोजन करती हैं। क्योंकि भारतीय समाज की जर्जर, परम्परा ग्रस्त रुढ़ मानसिकता ने कुल मर्यादा, पराया धन, वंश बढ़ाने वाली, दहेज आदि जैसे बंधनों में जकड़ कर बेटियों के जीवन को भाग्य भरोसे छोड़कर जीना कठिन एवं संघर्षपूर्ण बना रखा है वैसी स्थिति बेड़िया समाज में देखने को नहीं मिलती है। मुख्यधारा से काट कर हाशिये पर धकेल दिये गये बेड़िया समाज में स्त्री का महत्व देखने को मिलता है। यहाँ महिला ही परिवार पालक है, इसलिए लड़की जन्म पर बेड़िया समाज में खुशियाँ मनाई जाती है। सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रुप से पिछड़ा समाज होने के बावजूद भी नारी की महत्ता को बेड़िया समाज भलिभांति समझता है।

निष्कर्ष : शरद सिंह ने बेडिया समाज के नारी की सभी समस्याओं को उजागर करने के साथ ही नारी के अंतर्मन को भी पहचानने का सफल प्रयास किया है। परंपरागत भारतीय समाज में लड़की का जन्म किसी अपशगुन से कम नहीं समझा जाता है वैसे में बेडिया समाज में लड़की जन्म लेने पर उत्सवों का आयोजन किया जाना आधुनिक समय में सकारात्मक पहलू माना जा सकता है। किन्तु इस उत्सव का आयोजन भविष्य में उस लड़की द्वारा असभ्य एवं अनैतिक कार्यों के माध्यम से धनार्जन हेतु किया जाता हो तब इस बात को आधुनिक सभ्य समाज स्वीकार्य नहीं करेगा। लेखिका शरद सिंह ने बेडिया समाज में प्रचलित समस्याओं को ही न सिर्फ उजागर किया है बल्कि उन समस्याओं का

समाधान भी बताया है। पुरुषसत्तात्मक समाज में औरतों के प्रति विचारधारा एवं मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता पर जोर डालते हुए इस समाज को शिक्षित करना और सभ्य एवं नैतिक तरीके से आर्थिक रुप से सक्षम बनाने की बात लेखिका करती हैं। हाशिये में ढकेल दिये गये इस समाज को विकास की मुख्यधारा में लाकर उनमें आमूलचूल परिवर्तन करने हेतु सभ्य समाज, सरकार एवं गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से उनके विकास के लिए व्यापक कदम उठाने की आवश्यकता है। बेड़िया समाज ने पूरे देश में अपनी पहचान राई नृत्य से बनाई है इतनी समृद्ध कला में पारंगत होने के बावजूद भी इस समाज की नारियों की ऐसी दुर्दशा क्यों? यह सवाल पाठकगण को सोच–विचार करने के लिए विवश कर देता है। नारी जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। लेखिका ने नारी जीवन की त्रासदी को विविध कोणों से अंकित किया है। लेखिका ने समाज में फैले उन समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई हैं जो प्रायः अछूते रह जाते हैं।

– लक्षेश्वरी, शोधार्थी,
किरोड़ीमल शासकीय कला एवं विज्ञान
महाविद्यालय, रायगढ़ (छ.ग.) मो. 7974426955
– डॉ. हरिणी रानी आगर शोध
निर्देशक
शासकीय बिलासा कन्या पी. जी. महाविद्यालय,
बिलासपुर (छ.ग.)

संदर्भः–

1. शरद सिंह, पिछले पन्ने की औरतें, सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं 12
2. वही पृ.सं. 27
3. अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता महिला लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन, सारांश प्रकाशन नई दिल्ली, 1996, पृ.सं. 101
4. शरद सिंह, पिछले पन्ने की औरतें, सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं 159

सुशासन में नागरिक समाज की भूमिका

– डॉ. रविकान्त शुक्ल

सारांश : सुशासन का तात्पर्य हैं ऐसा शासन जहाँ सुख शांति हो, जनता में परस्पर सद्भाव हो, सब के नागरिक अधिकार सुरक्षित हो, पुलिस का व्यवहार सद्भावपूर्ण हो, राजनेताओं में सेवाभाव हो, सरकारी अधिकारी अपने को जनता का सेवक समझे। सुशासन एक सार्वकालिक, सार्वभौमिक, आदर्शात्मक एवं नागरिक केन्द्रित अवधारणा है किसी भी देशकाल व परिस्थितियों में यदि सरकार जनकेंद्रित, समता उन्मुखी एवं संवेदनशील है तो उसके शासन को सुशासन कहा जाता है। सुशासन के प्रमुख तत्व हैं। सक्षमता एवं प्रभावशीलता, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व व जनसहभागिता, अनुक्रियात्मकता, आम सहमति, समावेशी तथा विधि का शासन। नागरिक समाज का तात्पर्य सरकार तथा व्यावसायिक संगठनों से इतर ऐसे सामाजिक संगठनों से है जो स्वेच्छा से तथा सामाजिक कल्याण की भावना से जनता की सेवा करते हैं। गैर सरकारी संगठन, उपभोक्ता संगठन, पर्यावरणीय समूह तथा सामाजिक उद्देश्य से निर्मित सहकारी संगठन नागरिक समाज के उदाहरण हैं। वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को लागू करने में नागरिक समाज की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये संगठन जनता से जुड़कर जनता की वास्तविक इच्छा को सरकार के सामने रखते हैं और शासन में जन भागीदारी को बढ़ावा देकर सुशासन की अवधारणा को लागू करते हैं। पारदर्शिता की दिशा में मील का पत्थर माने जाने वाला सूचना का अधिकार कानून नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) की सूचना अधिकार आंदोलन का ही परिणाम है। इसके अलावा प्रसिद्ध लोकपाल बिल को पारित किए जाने में भी अन्ना हजारे के नेतृत्व में नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) ने अहम योगदान दिया है। सरकारी नीतियों, कार्यक्रम और कमियों से परिचित कराकर शासन में जवाबदेहिता

को भी बढ़ाते हैं।

Keywords : पारदर्शिता, जनसहभागिता, संवेदनशील, जवाबदेहिता, भ्रष्टाचार ।

प्रस्तावना : नागरिक समाज की भूमिका पिछले कुछ समय से बहुत महत्वपूर्ण हो गई है, खास तौर पर राज्य की शक्तियों को कम करने वाली नवउदारवादी अवधारणा व विश्व बैंक की शासन की अवधारणाओं के अंतर्गत वर्तमान वैश्वीकरण परिदृश्य ने भी नागरिक समाज की कई सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों में बढ़ती भूमिका पर बल दिया है, जिनमें अभी तक राज्यों की भूमिका प्रधान थी। राज्य को अब एक मदद करने वाली एक समन्वयक संस्था के रूप में दर्शाया जाने लगा है जो कि निजी एवं गैर सरकारी शासन से संबंधित संस्थाओं को सहयोग प्रदान करेगी। अनेक प्रकार के नए विकास ने विभिन्न प्रकार के नागरिक समाजों को जन्म दिया है जो कि नीति निर्माण में अहम भूमिका अदा करते हैं। इसके अंतर्गत राज्य की कल्याण, सामाजिक सुरक्षा से संबंधित प्रावधान और सरकारी नीतियों पर आम जनता का सरकारी तंत्र के प्रति सम्मोहन जैसी वचनबद्धता वाले आधारभूत बदलाव भी शामिल है। नागरिक समाज के अंतर्गत सभी प्रकार के स्वयंसेवी संगठनों को शामिल किया जाता है तथा उन सामुदायिक अन्तःक्रियाओं को भी स्थान दिया जाता है जिन्हें राज्य द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता। नागरिक समाज से आशय स्वयं सेवी संस्थाओं का वह सुदृढ़ आधार है, जो राज्य एवं अर्थव्यवस्था के बाहर विकसित होता है। नागरिक समाज सामाजिक निवास है, जिसे पूंजी निर्माण एवं बाजार व्यवस्था से भिन्न माना गया है, निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता के साथ यह भी भागीदारी करता है और स्वतंत्र व्यक्ति और समूहों के साथ मिलकर सक्रिय भूमिका का निर्वाह करता है, तथापि निजी क्षेत्रों से भिन्न इसका ध्येय सार्वजनिक भलाई, आम सहमति, एकात्मकता तथा सामूहिकता है। नागरिक समाज सरल शब्दों में समूहों के एक ऐसे तंत्र और संबंधों को रेखांकित करता है जो कि राज्य द्वारा प्रतिबंधित नहीं किए जाते हैं। इनसे समाज की मुख्य समस्याओं को उजागर करने, वर्तमान मुद्दों को चिन्हित करने, पिछड़ों को सशक्त करने की योजनाबद्ध वार्ताओं में एक स्वतंत्र आवाज उठाने और नीति निर्माण में विचारों के आदान प्रदान करने की उम्मीद की जाती है।

भारत में नागरिक समाज संगठन : भारत में सदियों से चली आ रही नागरिक समाज संगठन की गतिविधियों और आंदोलनों की लंबी परंपरा रही है। भारत में वैदिक काल से ही नागरिक समाज संगठन की जड़ें अस्तित्व में थी। भारत में विभिन्न धर्म हिन्दू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध और जैन धर्म ने हर समय से ही व्यवहार पर बल दिया है जो समाज और मानव जाति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। दूसरों के लिए देने की अवधारणा हमारे धर्मो में बहुत अंतर्निहित है। हमारे यहाँ हिंदू धर्म में 'दान' सिख धर्म में 'दषवंद' और इस्लाम में 'जकात' का उल्लेख है, जो परोपकार करने की भावना से है। मध्यकाल में भी शैक्षिक संगठन, शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित कल्याणकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से संबंधित थे। 19वीं सदी में नागरिक समाज संगठन से लोकप्रिय लामबंदी का जन्म हुआ, जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह जैसे ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन का उदय हुआ, जिन्होंने विभिन्न सुधार आंदोलनों का मार्गदर्शन किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में विभिन्न गैर सरकारी संगठनों और शैक्षिक संगठनों की सक्रिय भागीदारी देखी गई। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वैच्छिक क्षेत्र को गति मिली। उन्होंने जनता को संगठित किया और सभ्य समाज के लिए एक स्थान बनाया जिसने सत्याग्रह (सत्य और अहिंसा) असहयोग और सविनय अवज्ञा जैसे आंदोलनों को सफलतापूर्वक परिणाम दिया। गांधी जी की विचारधारा ने आजादी के बाद भी लोगों को प्रेरित किया और करती रही। सुंदरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में किए गए चिपको आंदोलन में स्वतंत्रता पूर्व आंदोलनों की झलक देखी जा सकती है और साथ ही हाल में अन्ना हजारे द्वारा

भ्रष्टाचार विरोधी प्रदर्शन और ग्रामीण कार्यकर्ताओं द्वारा सामाजिक अंकेक्षण आंदोलन तथा इसी तरह के अन्य कई उदाहरण हैं।

स्वतंत्रता के बाद केंद्र सरकार ने अपने विभिन्न प्रयास के माध्यम से केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की और सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रारंभ किये। ये प्रयास मूल रूप से इस उद्देश्य से किए गए हैं जिससे सामाजिक कल्याण विकास कार्यों में लोगों की भागीदारी बढ़ सके। भारत में पंचायती राज संस्था की स्थापना के बाद विभिन्न किसान और सहकारी समितियां सामने आई और नागरिक समाज संगठनों के नेटवर्क को बढ़ाने में सहयोग किया। 60 के दशक में सूखे, अकाल और युद्ध के स्वैच्छिक कार्रवाई को बढ़ावा मिला। 1970 और 1980 के दशक में नागरिक समाज संगठनों विशेषकर गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) की संख्या, गरीबी उन्मूलन, विकास और वृद्धि, शिक्षा का अधिगम, गरीबों का सशक्तिकरण, नागरिक स्वतंत्रता का संरक्षण आदि क्षेत्रों में वृद्धि हुई और इन्हें राज्य के विकास में एक महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। नब्बे के दशक में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के साथ गैर सरकारी संगठनों की भूमिका बढ़ गई। विश्व बैंक और आईएमएफ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने विकासशील देशों को सहायता देने के लिए गैर राज्य–कर्ताओं के साथ काम करने को बढ़ावा दिया। 21वीं सदी में भारत में नागरिक समाज संगठन ने सूचना का अधिकार अधिनियम (आरटीआई) 2005, और लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013 को अति नियमित करने के लिए एक बड़ी पहल की।

सुशासन में नागरिक समाज की भूमिका : राज्य के नागरिको की सेवा करने की क्षमता का अर्थ ही सुशासन है सुशासन के अंतर्गत वे सभी नियम व कानूनी प्रक्रियाएं, संसाधन एवं व्यवहार शामिल है, जिसके द्वारा नागरिको के मसले व्यक्त किए जाते हैं, संसाधनों का प्रबंधन किया जाता है और शक्ति का प्रयोग किया जाता है। अर्थात राज्य द्वारा संसाधन एवं शक्ति प्रयोग समाज के विकास एवं कल्याण के लिए किया जाता है। सुशासन को प्रभावी ढंग से लागू करने में राज्य सरकार, बाजार और नागरिक समाज, सिविल सोसायटी की महत्वपूर्ण भूमिका है। नागरिक समाज के अंतर्गत गैर सरकारी संगठन, नागरिक समाज के संगठन, मीडिया संगठन एसोसिएशन, ट्रेड यूनियन व धार्मिक संगठन आते हैं। सुशासन को अमल में लाने के लिए नागरिक समाज का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यही समाज की क्षमता में वृद्धि करते हैं और उसे जागरूक बनाते हैं। यही सरकार और राज्य को आगाह करते हैं कि कैसे नागरिको की भागीदारी से उनका संपूर्ण विकास किया जाए। नागरिक समाज सामूहिकता को बढ़ावा देकर सहभागिता को सामाजिक जीवन का अंग बनाता है। नागरिक समाज ने पिछले कुछ दशकों में गांवों में छोटे पुस्तकालय, क्लबों और स्कूलों से छोटे कस्बों में चौरिटी गृहों और शिक्षा संस्थाओं तथा महानगरों में काम करने वाली पहली गैर सरकारी इकाइयों और वहाँ से बड़े बजट वाले निगम प्रतिष्ठानों तक लंबी छलांग लगाई है। इसने प्रारंभिक शिक्षा, ग्रामीण प्रौद्योगिकी के विस्तार, प्राथमिक स्वास्थ–परिचर्या और शहरी विकास के मुद्दों जैसे क्षेत्रों में सरकार के प्रयासों की अनुपूर्ति की है। अर्थव्यवस्था की समृद्धि और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप हमारे देश में तृतीयक क्षेत्रक तेजी से विस्तार के मार्ग पर बढ़ रहा प्रतीत होता है, वह पेयजल की आपूर्ति, भू–संरक्षण, बच्चों की देखभाल, लैंगिक समानता, कौशल प्रशिक्षण, उद्यमशीलता विकास, माइक्रो वित्त आदि जैसे लोगों के सरोकार के और बहुत से मुद्दों पर सकारात्मक योगदान देने का प्रयास कर रहा है। इन संगठनों को अपनी और अधिक समृद्धि के लिए जिस चीज की आवश्यकता है वह है समर्थन का वातावरण।

सुशासन को स्थापित करने में नागरिक समाज संगठनों के समक्ष चुनौतियाँ : सुशासन को स्थापित करने में नागरिक समाज संगठनों के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियाँ है –

- नागरिक संगठनों के पास पर्याप्त वित्तीय संसाधनों का अभाव होता है।
- नागरिक समाज की 'असंगठित प्रकृति', नियामक ढांचे की कमी।

■ नागरिक समाज संगठनों के बड़े हिस्से के काम–काज में पारदर्शिता की कमी।

■ हाल ही केन्द्रीय गृह मंत्रालय में कुछ गैर–सरकारी संगठनों की पहचान देश की सुरक्षा के लिए खतरे के रूप में की है। ।

■ नागरिक संगठनों में पेशेवर और प्रशिक्षित कर्मचारियों की भारी कमी है। अधिकांश कर्मी अयोग्य और अकुशल है।

निष्कर्ष : उपरोक्त से हम सुशासन में नागरिक समाज की भूमिका को समझ सकते हैं तथा उसकी भमिका का परीक्षण भी कर सकते हैं। नागरिक समाज की विभिन्न भूमिकाएं जैसे नीति समर्थन, सुरक्षा भूमिका, पारदर्शिता को बढ़ावा देना और विकास में समुदाय की एक सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करना है। इस प्रकार नागरिक समाज सुशासन का प्रमुख उपकरण बन गया है।

डॉ. रवि कान्त शुक्ल, सहायक आचार्य,
लोक प्रशासन विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर,
उत्तर प्रदेश, पिन–272202
मोबा. 8858333071

संदर्भः–

1. भट्टाचार्य, मोहित, न्यू हॉरिजन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेषन, नई दिल्ली, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिसट्रब्यूटर्स, 2011
2. डायमंड, लैरी रिथिंकिंग सिविल सोसाइटी : टूवर्ड डेमोक्रेटिक कसॉलिडेसनश जनरल ऑफ डेमोक्रेसी, वाल्यूम 5, नंबर 3 (जुलाई 1994)
3. वोरिस डेविल ष्ए कन्सेप्च्यूअल हिस्ट्री ऑफ सिविल सोसाइटी : फ्रॉम ग्रीक विगनिंग टू द एण्ड ऑफ मार्क्स," पास्ट इम्परफेक्ट, वाल्यूम 6 (1997) : 3 – 42
4. एशियाई डेवलपमेंट बैंक, ओवरव्यू ऑफ सिविल सोसाइटी ऑर्गनाइजेशन : इण्डिया, https://www-abdorg/publication/overview&civil&society&organizationindia
5. कैराथर्स, थॉमस, द कनसेप्ट ऑफ ए सिविल सोसाइटी इज ए रिसेन्ट इनवेन्सन फॉरेन पॉलिसी (1999) : 18–29, 1 नवम्बर, 2017 को www-osfs-am/wp content/upload/2013/03/carothers&on&civil&society-Pdf last पर पुनः प्राप्त प्रपत्र।
6. द वर्ल्ड बैंक, डिजाइनिंग सिविल सोसाइटी hhtp://go-worldbank-org/4CE7W046Ko

Importance of Life Skills for School Going Adolescents in the wake of COVID Pandemic

- Vishal Mishra
- Parul Gazta (Research Scholor)

Abstract

The COVID pandemic posed a significant threat to the survival and maintenance of individuals' physical and mental health. The repercussions faced by adolescents are vital to be discussed. Adolescents are already considered in a critical state of storm and stress; the pandemic created further challenges to their development and coping mechanisms. The authors attempt to see the importance of life skills for school-going adolescents in the COVID era. Secondary research analysis confirms the increased importance of core life skills to adolescents adjusting to the new normal.

Key Words : *Life Skills, Adolescent, COVID Pandemic, School.*

Introduction :

Life Skills refers to a broad group of psychosocial, interpersonal skills that can help individuals make important life decisions. The World Health Organization WHO (1994) defines *Life Skills* as "the abilities for positive behaviour that enable and empower individuals to meet the challenges of everyday life." Life skills help promote mental wellbeing and competence in young people. Along with reading,

writing, and arithmetic, a child needs to develop a broad set of competencies and skills. It helps adolescents confidently cope with the competitive world's challenges.

The recent COVID-19 pandemic has created uncertainty and imbalance in the lifestyle of individuals all over the world. The pandemic has impacted the way we used to work and learn. The pandemic created history's most severe global education disruption (UNESCO, 2021). As a result, children and adolescents experience a prolonged state of physical isolation from their peers, teachers, extended families, and community networks (Elizabeth et al., 2020). According to the United Nations (2020) report, 'Children are not the face of this pandemic, but they risk being among its biggest victims.' The nationwide closures of schools and colleges have negatively impacted over 91% of the world's student population (Lee, 2020). The home confinement of children and adolescents is associated with uncertainty and anxiety, which is attributable to disruption in their education, physical activities, and opportunities for socialization (Jiao et al., 2020). A study found that older adolescents and youth are anxious about cancelling examinations, exchange programs, and academic events (Lee, 2020). To address the above discussed, life skills could play a significant role for adolescents in adapting to the new normal. It is crucial to develop skills to cope & deal with the uncertainty of the situation.

Objectives of the Study

1. To understand the need for life skills for adolescents in the COVID pandemic.

2. To analyze the role of core life skills for adolescents to adjust to the new normal situation.

Importance of Life Skills for school-going adolescents in COVID-19 times

The findings are presented in thematic form based on ten core life skills given by the WHO. For analysis, the complementary skills are paired under five significant heads.

1. Decision-Making and Problem-Solving

To deal effectively with day-to-day life challenges requires constructive decision-making and problem-solving skills. Adolescents need to make decisions in friendship, academics, extracurricular involvement, and consumer choices (Halpern-Felsher, 2009). The COVID-19 pandemic has affected young people's decision-making, especially in career planning (Jemini-Gashi & Kadriu, 2022). Due to the home quarantine and isolation, it is expected that children would do better in these challenging times if they are taught how to aid themselves in difficult situations by making sensible decisions (Shah et al., 2020).

2. Creative Thinking and Critical Thinking Skills

Creative thinking enables individuals to explore the available alternatives and their possible consequences. At the same time, critical thinking is the ability to analyze information and experiences objectively (WHO, 1994). The rational and unbiased analysis of information to form a judgment and guide action was of utmost importance during the pandemic. In such times of uncertainty, taking up creative pursuits like art, music, dance, and others can help manage everyone's mental health and wellbeing (Singh et al., 2020). There is a clear case for critical thinking now, more than ever before. With the mass shutdowns throughout the world, the thinking adolescent's needs will help navigate the uncertainties they will undoubtedly face when they come out of adolescence (Seale, 2020).

3. Effective communication and interpersonal relationship skills

These skills allow individuals to express (verbally and non-verbally) themselves in ways appropriate to cultures and situations and help individuals relate and interact with people in positive ways. School closures due to pandemic have affected their social life and relationships (UNESCO, 2021). Acquiring social-emotional skills is crucial for children's success and well-being in life (OECD, 2015). Distancing measures lead to a lack of physical closeness in the relationships among school professionals and students (Herrmann, 2021). It is advised that parents should encourage adolescents to keep in touch with their peers and communicate with them about their feelings and common problems they face. This may also lead to appropriate problem-solving and enhanced interpersonal relationships (Singh et al., 2020).

4. Self-awareness building and empathy

Self-awareness includes recognizing self, character, strengths, weaknesses, desires, and dislikes. Whereas empathy is the ability to feel for another person even in a situation that we may not be familiar with (WHO, 1994). To deal with COVID repercussions, acquiring social-emotional skills such as self-control, self-regulation, and goal-directed behaviour predicts better academic and social adjustment and overall youth wellbeing (Pigaiani et al., 2020). In fact, as for physical well-being, self-evaluation is crucial to promote mental and social well-being as parts of the individual's overall subjective well-being (*ibid.*). Understanding self- strengths and weaknesses become

crucial to dealing with uncertain situations.

5. Coping with emotions and stress

The COVID pandemic concerns related to abrupt changes in daily routines and restrictive measures affected adolescents' emotional and social states (Jemini-Gashi & Kadriu, 2022). Most students do not have the appropriate connectivity, device, and digital skills to find and use educational content dependent on technology (UNESCO, 2021). This leads to more stress and adolescents' fear of completing their education online. As recommended by the WHO, the measures helpful to help adolescents to cope with stress could be identifying normal emotional reactions, engaging in dialogue and social exchange, maintaining appropriate lifestyles and social contacts, seeking information from reliable sources and developing strategies for emotional regulation.

Discussion

The current study discusses the importance of life skills for school-going adolescents in the new normal induced by the COVID pandemic. The majority of the adolescents experienced depression during the covid-19 pandemic (Loades et al., 2020). After the pandemic children started to adopt normalcy again after the stressful events, still many of these adolescents are vulnerable to developing psychological issues. Studies have documented that domestic violence, family quarrels, lack of personal space, inability to meet and play with peers and friends, and others are significant stressors for adolescents. There emerges a need to work on enhancing adolescents' skills to deal with these issues arising as a consequence of the COVID pandemic. The ten-core life skills help achieve adolescents' social, thinking, emotional skills, and overall well-being.

Conclusion :

The latest COVID pandemic and associated lockdowns came with lots of anxiety and a sense of fear in many people worldwide. The educational sector was one of the most affected sectors because of the pandemic. The physical classrooms turned into virtual classrooms, due to which the physical activity got severely affected. The lack of physical exposure leads to mental health issues among adolescents. Life skills could play a vital role in dealing with such situations thereby, the importance of these skills becomes more pertinent for adolescents.

Central University of Rajsthan
Mob. 9816092373

References :

1. •Halpern- Felsher, B. (2009). Adolescent decision making: An overview. *The Prevention Researcher*, *16*(2), 3-8.
2. Herrmann, L., Nielsen, B. L., & Aguilar-Raab, C. (2021). The Impact of COVID-19 on Interpersonal Aspects in Elementary School. *Frontiers in Education*, *6*.
3. Jemini-Gashi, L., & Kadriu, E. (2022). Exploring the Career Decision-Making Process During the COVID-19 Pandemic: Opportunities and Challenges for Young People. *SAGE Open*, *12*(1)
4. Jiao, W. Y., et.al. (2020). Behavioral and emotional disorders in children during the COVID-19 epidemic. *The journal of Pediatrics*, *221*, 264-266.
5. Lee, J., (2020). Mental health effects of school closures during COVID-19. Lancet. Child Adolescent. Health, https://doi.org/10.1016/S2352-4642(20) 30109-7. PubMed. Accessed as on 13-03-2022
6. Pigaiani, Y., et.al. (2020). Adolescent lifestyle behaviors, coping strategies and subjective wellbeing during the COVID-19 pandemic: an online student survey. In *Healthcare* (Vol. 8, No. 4, p. 472).
7. Shah, K., et al. (August 26, 2020) Impact of COVID-19 on the Mental Health of Children and Adolescents. Cureus 12(8): e10051. doi:10.7759/cureus.10051
8. Singh, S., et.al. (2020). Impact of COVID-19 and lockdown on the mental health of children and adolescents: A narrative review with recommendations. *Psychiatry Research*, *293*, 113429.
9. UNESCO. (2021). One year into COVID-19 education disruption: Where do we stand? https://en.unesco.org/news/one-year-covid-19-education-disruption-where-do-we-stand. Accessed as on 15-03-2022
10. World Health Organization. Division of Mental Health. (1994). Life skills educatio for children and adolescents in schools. Pt. 1, Introduction to life skills for psychosocial competence. https://apps.who.int/iris/handle/10665/63552 Accessed as on 14-03-2022.

100 बड़े हिंदी रचनाकारों में सांभरिया का 18 वां स्थान

जयपुर। राही सहयोग संस्थान के द्वारा वर्ष 2022 की हिंदी के सौ बड़े वर्तमान साहित्यकारों की जो राही रैंकिंग जारी की गई है, उसमें वरिष्ठ साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया का 18वां स्थान रहा है। पहले स्थान पर चित्रा मुद्गल और दूसरे स्थान पर ममता कालिया रहीं।

गत वर्ष श्री सांभरिया का 24वां स्थान रहा था।इस वर्ष उनका सांप उपन्यास,जो हाशिए का समाज पर केन्द्रित है आने के बाद उनकी साहित्य जगत में ख्याति बढ़ गई। राजस्थान में उनका प्रथम स्थान रहा। श्री सांभरिया देश के उन गिने–चुने साहित्यकारों में से एक हैं, जिनके साहित्य पर लगभग चालीस शोधार्थी पीएचडी कर रहे हैं अथवा कर चुके हैं।

देश भर के लगभग 24 विश्वविद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में उनकी कहानियां लघुकथाएं एवं नाटक पढ़ाए जाते हैं। उनकी इस उपलब्धि पर राजस्थान प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव प्रेमचंद गांधी , फारूक आफरीदी, नंद भारद्वाज, हरिराम मीणा, रमेश खत्री,डा सत्यनारायण, दुर्गा प्रसाद अग्रवाल आदि साहित्यकारों ने श्री सांभरिया को शुभकामनाएं दी हैं।

रमेश खत्री
वरिष्ठ साहित्यकार
9414373188

आंबेडकर तुम्हें कोटिश नमन...

– कुसुम वियोगी

आंबेडकर,
एक व्यक्ति थे
विचार बन गये !
एक फूल थे
करोड़ो गले का
हार बन गये !
आंबेडकर
उत्पीड़न की आग थे
गांधी को जीवन दे
करूणा के समंदर हो गये !
वाल्टियर से योध्दा
मार्टिन लूथर से पुरोधा
नेलशन मंडेला की आस
अमर्त्य सेन की प्यास
अबला रही,
महिलाओं का पूर्ण विश्वास
आधुनिक युग का इतिहास !
तुम !
सब कुछ/सचमुच
क्या–क्या नहीं थे .... मेरे प्रज्ञा सूर्य !
हम यूं ही तो आंदोलित नहीं होते
तेरे छोड़े कारवां को आगे ले जाने को !
अब तुम,
बूंद से व्यक्ति
व्यक्ति से विचार
विचार से वैश्विक आंदोलन बन चुके हो !
प्रज्ञा सूर्य...३.....
अब तुम !
एक फूल नहीं, करोड़ों–करोड़
गले का हार बन चुके हो ! हम भारत के लोगों की ओर से
तुम्हें कोटिश् नमन ...,मेरे प्रज्ञा सूर्य !

आंबेडकरवादी कवि एवं साहित्यकार
1/4334–ए, रामनगर विस्तार, शाहदरा, दिल्ली–110032
मोबा. 9911409360

तथागत बुद्ध के सारे उपदेश, सारी देशना एक छोटे से शब्द में समायी हुई है- वह है स्मृति। पाली भाषा में कहते हैं- सति और कबीर, रैदास जैसे संतों ने कहा है - सुरता।

स्मृति का अर्थ मेमोरी नहीं है, इसका अर्थ है जागरुकता, हर पल जागृत होकर रहना, होश में रहना।

लेकिन मनुष्य अपने दैनिक जीवन में खाना, सोना घर-दफ्तर, खेत में जागरुक नहीं रहता है। सबकुछ एक मशीन की तरह मैकेनिकल हो जाता है।

इस तरह मनुष्य जीवन अधिकतर बेहोशी से भरा हुआ रहता है। अव चेतन मन यानी सबकांशियस माइंड का तो उपयोग नहीं करते हैं, उसे पहचानने व जागृत करने की तो कोशिश ही नहीं करते।

तथागत बुद्ध कहते है, उस अवचेतन मन को जब तक जागृत न कर लिया जाए, चेतन न कर लिया जाए, उसमें उजाला न भरा जाए तब तक अंदर के विकारों के दुख से मुक्त न हो सकोगे।

तुम्हारे भीतर जब चेतना का दीया जलेगा, तब तुम परम प्रकाशित हो उठोगे। इस दशा को ही बुद्ध ने आनापान सति, ध्यान, समाधि या विपस्सना कहा है और कबीर व रैदास ने सुरता कहा है और सुरता को सम्बोधित करते हुए ही सारी गूढ़ वाणियों की रचना की है।

साहब तेरी नेक कमाई, तूने सोती कौम जगाई ।

साहब के निर्वाण दिवस पर

विनम्र अभिवादन एवं नमन

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

_____

_____

_____

_____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार